स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

नारायणे भगवति तद्धीः कर्म यत्करोति तत् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १९ | गौराब्द ४८७, मास–नारायण ६, वार–वासुदेव
रविवार, ३० अग्रहायण, सम्वत् २०३०, १६ दिसम्बर, १९७३ | संख्या ७

दिसम्बर १९७३

श्रीश्रीउद्धव-कृतं श्रीश्रीकृष्णमहिमा–स्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत ३।२।१२-२३)

श्रीउद्धव उवाच–

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥१॥

श्रीविदुरजीसे श्रीउद्धवजीने इस प्रकार कहा–

भगवान् श्रीकृष्णने इस मर्त्य-जगत्में अपनी योगमायाके बलसे अपनी दिव्य श्रीमूर्त्ति प्रकट की थी । वह श्रीमूर्त्ति मनुष्य-लीलाके लिए उपयोगी थी । वह इतनी मनोरम थी कि उससे स्वयं श्रीकृष्ण को भी विस्मय होता था । वह परम सौभाग्य एवं सुन्दरताकी पराकाष्ठा स्वरूपा है । वह श्रीरूप समस्त भूषणोंका भी भूषण स्वरूप अर्थात् सारे लौकिक दृश्योंसे भी परम अलौकिक था ॥१॥

यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ।
कात्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुर्वाक्सूनृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥२॥

धर्मपुत्र श्रीयुधिष्ठिर महाराजके राजसूय यज्ञमें भगवान् श्रीकृष्णका नयनानन्दकारी उस श्रीरूपको देखकर तीन भुवनोंके प्राणियोंने यही अनुमान किया था कि विधाता ब्रह्माकी मनुष्य-निर्माण विषयमें जो कुछ निपुणता थी, वह सभी इस श्रीमूर्त्तिके प्रकाश हो जानेके कारण फीकी पड़ गई अथवा पूरी तरहसे पराभूत हो गई ॥२॥

यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ।
व्रजस्त्रियो वृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥३॥

उन श्रीकृष्णके साथ अनुरागयुक्त हास्य, परिहास, आमोद, प्रमोद, लीलावलोकन द्वारा अभिमानयुक्त व्रजसुन्दरियोंद्वारा प्रत्याख्यान (या तिरस्कार) करनेपर जब श्रीकृष्ण गमन करते थे, उस समय व्रजसुन्दरियोंकी आँखोंके साथ उनका चित्त भी श्रीकृष्णका अनुगमन करता था एवं उनका अपना अपना कार्य समाप्त न होनेपर भी वे गोपियाँ उनमें तद्गतचित्त होकर जड़ पुतलियोंकी तरह खड़ी रह जाती थीं ॥३॥

स्वशांतरूपेष्वितरैः स्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा ।
परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान् यथाग्निः ॥४॥

भगवान्के आश्रित व्यक्तियों का दो रूप है—(१) शान्तस्वरूप भगवद्भक्त एवं (२) दूसरे अशान्त स्वभाव भगवद्बहिर्मुख असुर। जिस समय असुर व्यक्ति उन भगवद्भक्तोंको पीड़ा प्रदान करते हैं, उस समय चर-अचर एवं चेतन-जड़ सभीके ईश्वर परतत्त्व स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तोंके प्रति करुणासे द्रवितचित्त होकर, प्राकृत जन्मरहित होने पर भी जिस प्रकार काठसे आग प्रकट होती है, उसी प्रकार अपने कला महत्तत्त्वके रचयिता कारणोदकशायी विष्णुके अंशसे भिन्न-भिन्न अवतार रूपसे इस प्रपंचमें प्रकट होते हैं ॥४॥

मां खेदयत्येतदजस्य जन्मविडम्बनं यद्वसुदेवगेहे ।
व्रजे च वासोऽरिभयादिव स्वयं पुराद् व्यवात्सीद्यदनन्तवीर्यः ॥५॥

श्रीवसुदेवजीके गृहमें अजपुरुष श्रीकृष्णकी जन्म-लीला, व्रजमें शत्रुओंके भयसे वास करनेकी लीला एवं अनन्तवीर्यशाली होनेपर भी मथुरा-परित्याग करनेकी लीला—आदि इन सभी लीलाओंका स्मरण आने पर मेरे मनमें बहुत बेचैनी हो जाती है ॥५॥

शुनोति चेतः स्मरतो ममैतद् यदाह पादावभिवन्द्य पित्रोः ।
तातांब कंसादुरुशंकितानां प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥६॥

श्रीकृष्ण माता-पिताके पादपद्मोंकी वन्दना कर कहे थे—हे तात ! हे माता ! कंसके भयसे

अत्यन्त भीत होनेके कारण मैं आप लोगोंकी सेवा नहीं कर सका, आप लोग मेरे इस अपराधको भूलकर मेरे प्रति प्रसन्न हों—श्रीहरिके ऐसे चरित्र का स्मरण करते करते मेरा चित्त बहुत ही व्यथित होता है ॥६॥

को वा अमुष्यांघ्रिसरोजरेणुं विस्मर्तुमीशीत पुमान् विजिघ्रन्।
यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतान्तेन तिरश्चकार ॥७॥

जिन्होंने कालरूपी अपने भ्रूकुटिके विलास द्वारा ही सारे पृथिवी का भार उतार दिया था, उनके चरणकमलोंकी रेणुओंका आस्वादन जिसने कर लिया है, ऐसा पुरुष किस प्रकार उसे भूल सकता है ? ॥७॥

दृष्ट्वा भवद्भिर्ननु राजसूय वैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ।
यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग् योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥८॥

योगी लोग योगके प्रभावसे जिस सिद्धिकी कामना करते हैं, राजसूय यज्ञके समय आप लोगोंने प्रत्यक्ष देखा था कि कृष्णद्वेषी शिशुपालने भी वह सिद्धि प्राप्त कर ली थी। ऐसे सिद्धि प्रदाता श्रीकृष्णका विरह कैसे सहन किया जाय ? ॥८॥

तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविन्दम् ।
नेत्रैः पिबन्तो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूतः पदमापुरस्य ॥९॥

दूसरे-दूसरे जो सभी नरवीर युद्ध-स्थलमें श्रीकृष्णके नयनानन्दकारी मुखकमलकी शोभा आखों द्वारा पान करते करते अर्जुनके अस्त्राघात से प्राण परित्याग किये थे, उन लोगोंने भी विष्णुका परमपद प्राप्त किया था ॥९॥

स्वयं स्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीश स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ।
बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोटीडितपादपीठः ॥१०॥

श्रीकृष्ण स्वयंरूप भगवान् हैं। वे तीन शक्तियोंके (चित् शक्ति, जीव शक्ति एवं माया शक्तिके) अधीश्वर हैं। उनके समान या उनसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है। वे अपने परमानन्द स्वरूपद्वारा परिपूर्णकाम हैं। इन्द्रादि असंख्य लोकपाल कर आदि एवं विभिन्न पूजोपहार समर्पण कर कोटि कोटि किरीटोंकी परस्पर टकराने की ध्वनि या उनके पादपीठमें अपने मुकुट टेककर उस ध्वनि द्वारा उनके पादपीठकी स्तव करते थे ॥१०॥

तत्तस्य कैंकर्यमलं भृतान्न विग्लापयत्यंग यदुग्रसेनम् ।
तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्ये न्यबोधयद्देव निधारयेति ॥११॥

हे विदुर ! ब्रह्मादि देवताओं द्वारा वाछित राजासनमें विराजमान श्रीउग्रसेनके सामने खड़े होकर जब श्रीकृष्ण, 'महाराज कृपा कर सुनें', ऐसा कहकर उग्रसेनसे निवेदन करते, तब

भगवान् के ऐसे भृत्यभाव का स्मरण कर मुझ जैसे भृत्योंके भी हृदयमें अत्यन्त वेदनाका अनुभव होता है ॥११॥

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं क वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥१२॥

अहो ! क्या आश्चर्यका विषय है ! बकासुरकी बहिन दुष्टा पूतनाने कृष्णविनाश करनेकी इच्छासे प्रेरित होकर कालकूट विष मिला हुआ अपना स्तन पान कराकर भी धात्रीके योग्य गति प्राप्त की थी। अतएव कृष्णके बिना ऐसे और कौन दयालु है, जिसके चरणोंमें मैं शरणापन्न होऊँ ? ॥१२॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुके दानका वैशिष्ट्य

हेलोद्धूलित खेदया विशदया प्रोन्मीलदामोदया शाम्यच्छास्त्रविवादया रसदया चित्तार्पितोन्मादया ।
शश्वद्भक्तिविनोदया स-मदया माधुर्यमर्यादया श्रीचैतन्य दयानिधे,तव दया भूयादमंदोदया ॥"

हे दयानिधे श्रीचैतन्य महाप्रभो ! आपकी वह शुभदा दया जो अनायास ही सारे दुःखोंको दूर कर देती है, जिसमें सम्पूर्ण निर्मलता है, जिसमें परमानन्द (और सभी विषयोंको भुलाकर) प्रकाशित होता है, जिसके उदयसे शास्त्र-विवादका अन्त हो जाता है, जिसके रसवर्षणसे चित्तकी उन्मत्तता (प्रेमोन्माद) हो जाती है, जिसकी भक्तिविनोदन-क्रिया सर्वदा शमता (या परम शान्ति) प्रदान करती है, माधुर्यकी मर्यादा द्वारा तुम्हारी अति विस्तारिणी वह दया मेरे प्रति उदित हो।

जिन श्रीश्रीगौरांगदेवकी प्रीति-वार्ताद्वारा गौड़देशकी अधिवासी लोग सब प्रकारसे गौरव बोध करते हैं, जिन श्रीश्रीगौरांगदेवकी माधुर्यकथाकी सदालोचना कर जगतके सभी व्यक्ति शान्ति प्राप्त करते हैं, वे श्रीश्रीगौरांगदेव परम दयामय हैं। जगतके हम सभी व्यक्ति ही दयाके भिक्षुक हैं। मनुष्य जाति अभाव द्वारा पीड़ित है। उस अभावको जो व्यक्ति दूर करते हैं, वे ही दाता कहलाये जाते हैं। जगतमें जिन सभी दानका परिचय है, वे सभी दान केवल अल्पकालके लिए स्थाई एवं असम्पूर्ण हैं। इसको छोड़कर जगतमें दाताओंकी संख्या भी

बहुत थोड़ी है। यदि दानप्रार्थीकी आशा-भरोसा अधिक हो, तो ऐसा होनेपर वे सभी दातालोग प्रार्थना करनेवाले व्यक्तियोंकी आशानुसार दान दे नहीं सकते। पण्डित व्यक्ति मूर्खोंको, धनवान् व्यक्ति दरिद्रों या निर्धनोंको, स्वास्थ्यवान् व्यक्ति रोगियोंको, बुद्धिमान् व्यक्ति बुद्धिहीनोंको उनके आशानुसार दान नहीं दे सकते। किन्तु श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने मनुष्योंको जिस वस्तुका दान दिया है, उतने बड़े दानकी आशा तो क्या कहे, प्रार्थना करनेमें भी मानव जाति असमर्थ थी। इतने बड़े दानका जगत्में आगमन हो सकता है, जीवोंके भाग्यमें वर्षण हो सकता है, इस बातकी मनुष्य-जाति इसके पूर्व चिन्ता या आशा भी नहीं कर सकी थी। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने मनुष्योंको जो अपूर्व दान दिया है, वह साक्षात् भगवद्प्रेम है। जगतमें प्रेमकी ही बहुत कमी है। इसलिए ही हिंसा, विद्वेष कामनाएँ एवं दूसरी दूसरी बातें इतना क्लेश प्रदान कर रही हैं। भगवान्की सेवा करनेके लिए जो व्यक्ति अत्यन्त लालसायुक्त हैं, उन्हें बाधा प्रदान करनेके लिए देवतातुल्य व्यक्ति तो क्या कहे, साक्षात् देवतागण भी सर्वदा प्रस्तुत हैं।

हम प्रत्येक मनुष्य ही अत्यन्त अभावग्रस्त हैं— अत्यन्त संकुचित दृष्टिसम्पन्न हैं। हम त्रिगुणों (सत्त्व, रजः एवं तम) द्वारा अत्यन्त जर्जरित होकर यथार्थ सत्यका अनुसन्धान कर नहीं पाते। इसलिए बहुत-सी असत्य बातें प्रलोभनकी भेंटें लेकर उपस्थित होती हैं। यदि उसमें मोहित हो जाय, तो मनुष्य-जीवन की और सार्थकता नहीं रहती।

श्रीश्रीगौराङ्गदेवकी दया किस गोमुखीके माध्यमसे वर्षित हुई थी? श्रील माधवेन्द्रपुरीपाद श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके उस दान या प्रेमप्रयोजनरूप कल्पतरुके मध्यमूल हैं। वह प्रेम ही एकमात्र अन्वेषण करने योग्य है, अविकृत शुद्ध आत्माका एकमात्र प्रयोजन है। वह प्रेम जिस प्रकार पाया जाता है, श्रील माधवेन्द्रपुरीपादने उसका एक मूलमन्त्र गाया था, उसे श्रील ईश्वर-पुरीपादने सुना था। श्रीश्रीमन्महाप्रभुने पुनः श्रील ईश्वर-पुरीपादके श्रीमुखसे वह गान सुननेकी लीला प्रकाश की थी। वह गान यह है—

अयि दीनदयार्द्रनाथ
हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदलोककातरं दयित
भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥

भारतवर्षमें यह दान श्रील माधवेन्द्रपुरीपादने दिया था। भारतके बाहर के स्थानमें दिया या नहीं दिया, इसका हमें अनुसंधान नहीं है। कृष्ण-प्रेम-प्रदान-लीला का यह मूलमन्त्र जिन भारतवासियोंके कानोंमें पहुँचा है, उन्हें ही सर्वार्थसिद्धि हुई है एवं जिनके कानोंमें नहीं पहुँचा है वे लोग छोटे-छोटे विषयोंमें आबद्ध होकर वर्त्तमान हैं। इस मूलमन्त्रकी परम आवश्यकता जिन व्यक्तियोंने नहीं समझा, उनका मानव-जीवन धारण वृथा है। यह विप्रलम्भ गीति हमारे अविकृत आत्माका धर्म है—हमारा सहज स्वभाव है।

ठाकुर श्रीबिल्वमङ्गलजीने एक समय कुविषयमें अभिनिवेष होनेका अभिनय दिखलाया था। शिखिपिच्छमौलि (मयूर पंख धारी श्रीकृष्ण) की सेवामें निमग्न होकर उन लीलाशुकजीने उनके श्रीकर्णामृतमें भी विप्रलम्भ-भजनकी बात थोड़ी-बहुत मात्रामें गान की है। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु मनुष्योंको जो बात कहनेके लिए प्रस्तुत थे, उसी बातका सुविचार किया जाए।

'गौड़देशके अधिवासी' होनेका अभिमान कर अभी भी हम विषय-कार्योंमें अभिनिविष्ट होकर वर्त्तमान हैं। इतनी बड़ी दरिद्रता है कि मनुष्योंकी भाषा द्वारा इसे व्यक्त नहीं कर सकते। इस दरिद्रतासे छुटकारा दिलानेके लिए ही श्रील माधवेन्द्रपुरीपादने विप्रलम्भ-भाव का प्रकाश किया था।

जो व्यक्ति हमारे अभावकी बात नहीं समझते, हम कई समय दुःखके साथ हँसी-तमाशा करते हुए उन्हें 'दयित' कहा करते हैं। व्रजवासियोंके निकटसे भगवान् श्रीकृष्ण जब मथुरा चले गये, तब व्रजवासियोंने नन्दनन्दन श्रीकृष्णके लिए यह बात कही थी। और भी कहा था—'मथुरानाथ', 'वृन्दावनपति' नहीं कहा। माथुर-गानकी बात बहुतसे व्यक्तियोंने सुनी होगी। ये सभी शब्द विप्रलम्भमयी परिभाषाएँ हैं। जिसे 'विरह' कहा जाता है, उसे संस्कृत अलङ्कार शास्त्रमें 'विप्रलम्भ' कहते हैं। व्रजवासी कृष्णको विरहावस्थामें कहते हैं—तुम 'दयित' (अर्थात् परम प्रियतम) हो, किन्तु तुम 'मथुरानाथ' हो। हमारे साथ सम्बन्ध त्यागकर चले गये हो। हम कांगाल हैं, तुम हमारे सर्वस्व हो। वह सर्वस्व आज लुट गया है। इसलिए दुःखकी बात कहने जाकर हास्यरसको छोड़कर और क्या आ सकता है? तुम हमारे नयनोंके मणि होकर आज हमारे आँखोंकी आड़में चले गये हो—हमें चिन्तामें व्याकुल कर मथुरामें चले गये हो। हे नन्दनन्दन! तुम क्या चिर दिन ही अधोक्षज बने रहोगे? तुम्हारे ऐसे अद्भुत एवं परम सौंदर्य, रूप, रस आदिका क्या हम दर्शन नहीं पा सकेंगे? तुम ज्ञानगम्य वस्तु हो। हमारे भीतर ज्ञान नहीं होनेके कारण हम देख नहीं पाते। हम अज्ञानी बालक एवं नासमझ हैं। हममें हजारों वर्षों की तपस्या नहीं होनेके कारण तुम ज्ञानभूमिमें चले गये हो, जहाँ हमारी इन्द्रियाँ नहीं जातीं। किन्तु तुम ही हमारे एकमात्र अवलम्बन हो एवं तुम्हारी चित्त दयासे द्रवीभूत है। तुम्हें हम कब देख पायेंगे? तुमने हमें दर्शन दिया था, हमारे चित्तवित्त आदि उस दर्शनसे हरण कर लिया था। हमारे सर्वस्वहरण करनेवाले तुम हरि आज मथुरामें चले गये हो। तुम्हारे दर्शनोंके अभावसे हमारा हृदय बहुत ही कातर है। उस चित्तकी वृत्ति—कृष्ण विरहसे तड़फते हुए चित्तकी जो व्याधि है, उसकी औषधि कहाँ है? इसलिए श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा है—हे विषयनिविष्ट चित्तवाले मनुष्य! इस संसारके तुच्छ विषयसम्बन्धी कार्य करते रहनेपर भी किस प्रकार उसके प्रति विरक्ति होकर तुम्हारा मंगल होगा, किस प्रकार तुम लोग गुणातीत या अप्राकृत अवस्थामें

उपस्थित हो सकोगे, इसके लिए तुम यह शिक्षा ग्रहण करो, तुम लोग श्रीकृष्णका संकीर्त्तन करो।

चेतोदर्पण-मार्जनं भवमहादावाग्नि-निर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्त्तनम्॥

श्रीकृष्णके संकीर्त्तन द्वारा आठ प्रकारसे सुखोदय होता है। हे कर्मपरायण जीवों! यह बात थोड़ी-सी सुनो। श्रीकृष्णका सम्यक् प्रकारका कीर्त्तन जयलाभ करें। जिन सभी व्यक्तियोंके कान विषय-चर्चा सुनते सुनते एकदम बधिर (बहरे) हो गये हैं, उन्हें कृष्ण संकीर्त्तन सुनाना होगा। बाहरी जगतकी चिन्ताधारा उन्हें धक्का देकर मायावाद रूप किनारेरहित सागरमें फेंक देती है। संसार सागरके विषय भोगका स्रोत उन्हें मायावाद सागरके विषय-त्यागके स्रोतमें बहाकर ले जाता है एवं कृष्णविमुखता रूपी चरम आवर्त्त-विवर्त्तमें डाल देता है। स्वयं 'खुदा' या 'भगवान्' बननेकी बुद्धिसे चालित होकर मनुष्य स्वगत-सजातीय-विजातीय भेदरहित होनेका स्वप्न देखते हैं, त्रिपुटी-विनाशका विचार अवलम्बन कर आत्मविनाशके पथकी ओर धावित होते हैं। उससे अपनी रक्षा करनी हो, तो श्रीकृष्णका संकीर्त्तन करना होगा। उससे आठ प्रकारसे सुखोदय होगा।

चित्तदर्पणके ऊपर बाहरी जगतका वातावरण निरन्तर ढेरका ढेर कूड़ा-कचड़ा लाकर जमा कर रहा है। कूड़ा-कचड़ा चेतन की वृत्तिको ढक देता है। चित्त दर्पणके ऊपर जो धूल-जम गया है, या उसके ऊपर जिस प्रकारसे विकृत रूपमें दृश्य जगत् प्रतिफलित हो रहा है, उसके परिणामसे हममें से कोई कर्मवीर, कोई धर्मवीर, कोई कामवीर, कोई अर्थवीर, कोई ज्ञानवीर, कोई योगवीर, कोई तपोवीर होनेकी अवैध अभिलाषा कर उससे ध्वंस प्राप्त करनेके लिए उन्मत्त हो उठे हैं एवं मनुष्य समाज प्रेमसे दिनों दिन कितने दूर चला जा रहा है—ये सभी असुविधाएँ गौण रूपसे अत्यन्त सहजमें कृष्णके सम्यक् कीर्त्तनसे दूर हो जायेंगी। कृष्णके सम्यक् कीर्त्तनके अभावमें मनुष्योंके शुभोदयमें दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ है।

श्रीकृष्णकीर्त्तनके "श्रीकृष्ण' मनुष्यके मनोधर्म रूपी कारखानेमें प्रस्तुत कृष्ण नहीं हैं। ऐतिहासिक कृष्ण, रूपक कृष्ण, तथाकथित आध्यात्मिक कृष्ण, कल्पित कृष्ण, प्राकृत सहजियाओंके कृष्ण, प्राकृत कामुकके कृष्ण, प्राकृत चित्रकारके कृष्ण, यथेच्छाचारिता के कवलमें कवलित कृष्ण, मिट्टी (जड़) बुद्धिके कृष्ण, किसी व्यक्तिके व्यक्तिगत रुचिमें ईंधन प्रदान करनेवाले कृष्ण मायामिश्रित कृष्ण—"श्रीकृष्णसंकीर्त्तनके श्रीकृष्ण" नहीं हैं। विख्यातकीर्त्ति उपन्यासकारने जब कृष्ण-चरित्र वर्णन किया, तब नवीन बंगीय युवक लोग कितनी उत्कण्ठा एवं आवेगके साथ उस वर्णना की कीर्त्तिगाथा बंगालके हाट घाट मैदान आदि में गाते हुए घूमने लगे। जब पहले 'कृष्णचरित्र' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, तब मैंने नवीन-प्रवीण सभी व्यक्तियोंके मुखसे ही सुना

कि इस बार कृष्णचरित्रके ऊपर एक नया प्रकाश आ गया है! "महाभारतके कृष्ण', 'भागवतके कृष्ण' आदि कितने ही विचार हुए। हमारे श्रीकृष्ण संकीर्त्तनके कृष्ण उस प्रकार किसी व्यक्तिकी इन्द्रि-तृप्ति के पूरणकारी कृष्ण नहीं हैं। मनुष्यकी स्थूल जड़ बुद्धि द्वारा उन श्रीकृष्णको मापा नहीं जा सकता।

'श्रीकृष्ण' में जो 'श्री' हैं, वे 'श्री' कृष्ण के द्वारा आकर्षण की गई हैं। 'कृष्ण' आकर्षण हैं एवं 'श्री' आकृष्टा हैं। 'श्री' परम सौन्दर्यवती हैं। परम सौंदर्यवतीको जो अपने सौंदर्यद्वारा आकर्षण करनेमें समर्थ हैं, ऐसे 'श्रीकृष्ण' हैं।

पञ्चम स्वरसे जो वंशीध्वनि गाई जाती है, उसे त्रिगुणोंद्वारा ताड़ित व्यक्ति सुन नहीं पाते। इसकी तो बात क्या कहे, चौथे मानमें भी श्रीकृष्णकी मुरलीका पञ्चम तान बहुतसे व्यक्ति सुन नहीं पाते। तुरीय राज्य वैकुण्ठमें श्रीलक्ष्मीनारायणके उपासक लोग कृष्ण-मुरली के पञ्चम-तानकी माधुरी समझ नहीं सकते।

जिस प्रकार रुद्रका परिचय, ब्रह्माका परिचय या विष्णुका परिचय होता है, उस प्रकार के गुणावतार-जातीय वस्तु श्रीकृष्ण नहीं हैं। वे गुणावतारोंके अवतारी हैं। जड़ ज्ञान द्वारा जानने योग्य वस्तु विशेष भी वे नहीं हैं। वे केवल चेतनाभास मन मात्रका ही आकर्षण नहीं करते, वे शुद्ध या आवरणरहित आत्माका आकर्षण करते हैं, वे सौन्दर्यवानों का आकर्षण करते हैं, वे सौंदर्यवतियोंका आकर्षण करते हैं।

जहाँ हम अत्यन्त भीति, संकोच एवं गौरवके साथ पूजा करने जाते हैं, वहाँ हम कृष्णको नहीं प्राप्त करते; वहाँ तो कृष्णके अवतारोंको ही प्राप्त करते हैं। हम अभावसे पीड़ित हैं, यह हेतुमूलक ज्ञान उस समय हमें ऐश्वर्यपति नारायणादिको उपासक बना देता है। श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभु दक्षिण देशसे 'ब्रह्म-संहिता' ग्रंथका एक अध्याय लाये थे। उसमें ब्रह्माजीने श्रीकृष्णका स्वरूप वर्णन करते हुए कहा है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

सभी कारणोंका कारण ढूँढने जानेपर कृष्णको ही पाया जाता है। कार्यकारणवाद की मूल चरम-वस्तुका अनुसन्धान करना आवश्यक है। उस जिज्ञासा या अनुसन्धानकी अन्तिम अवस्थामें श्रीकृष्ण ही आविर्भूत होते है। सौंदर्य या योग्यता न रहने पर वे आकर्षण नहीं करते। दया ग्रहण करना हो, तो दयाके दानीका चित्त आकर्षण करना पड़ता है, सारे जगत्के साथ बन्धुत्वका त्याग कर दानीका अव्यभिचारी या विशुद्ध बन्धव या प्रेयसी होना पड़ता है।

श्रीकृष्ण सत्, चित् एवं आनन्दघन मूर्त्ति हैं। ये नित्यकाल वर्त्तमान है। काल उनसे ही निकला है, कालका काल महाकाल उनके अधीन में है, वे पूर्णज्ञान वस्तु हैं, वे निरवच्छिन्न आनन्दमय वस्तु है।

इन प्रकारके श्रीकृष्णके सम्यक् कीर्त्तन द्वारा जीवोंका सब प्रकारसे शुभोदय होता है।

कृष्णका आंशिक कीर्त्तन कर यदि जीवोंका सर्वसुखोदय न हो, तो बहुतसे व्यक्ति कृष्ण-कीर्त्तनके शक्तिविशेषपर सन्देहयुक्त हो सकते हैं। कृष्णके विकृत कीर्त्तन द्वारा जीवोंको तुच्छ फल ही प्राप्त हो सकता है। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति श्रीकृष्णके सम्यक् कीर्त्तनकी विजय-कामना करते हैं।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद
श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(सहिष्णुता, अमानित्व एवं मानदत्व)

१—कृष्ण-प्रीतिके लिए सहिष्णु व्यक्तिको क्या करना चाहिए ?

"कोई तुम्हारी अत्यन्त निन्दा करें, तो उसे सहन करो। किसी का भी अपमान न करना होगा। यह देह पाकर किसी से भी शत्रुता न करनी होगी, काम कलिका स्थान है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। कृष्ण सेवाकी कामना अप्राकृत है, उसका नाम ही 'प्रेम' है। इन्द्रिय-तृप्तिकी कामना प्राकृत है, वही कलिका स्थान है। उसका अवश्य ही परित्याग करना होगा।"

—'कलि', ससंगिनी (क्षेत्रवासिनी),
स० तो० १५।२

२—भिन्न-प्रणालीमें असहिष्णुता-प्रदर्शन क्या स्वधर्मके प्रति अनुरागका लक्षण है ?

"जो व्यक्ति भिन्न या दूसरी प्रणालियोंके प्रति द्वेष, हिंसा, असूया या निन्दा प्रदर्शन करते हैं, वे लोग अत्यन्त असार एवं हतबुद्धि हैं। वे लोग अपने चरम प्रयोजनको उतना नहीं चाहते, जितना व्यर्थके विवादका वे लोग आदर करते हैं।"

—चै० शि० १।२

३—काम्य भक्तिवाले व्यक्ति क्या सहिष्णु हो सकते हैं ?

"जिनमें काम्य भक्ति हो, वे लोग क्रोध को जय नहीं कर पाते। केवल विवेक के द्वारा क्रोधको जय नहीं किया जा सकता। विषय राग अत्यन्त थोड़े समयमें ही विवेकको पूरी तरहसे दबाकर अपने राज्यमें क्रोधको स्थान दे देता है।"

—'धैर्य', स०तो० ११।५

४—'पेड़से भी सहिष्णु' कहनेसे कैसी दयाकी सूचना होती है ?

"तरोरपि सहिष्णुना इति वाक्येन संच्छेदकस्यापि छाया फलदानेनोपकरोति, कृष्णभक्तस्तु तदपेक्षोच्चप्रवृत्त्या दयया सर्वान् शत्रुमित्रानुपकरोतीति सूचितम् । अनेन हरिनामकृतां निर्मत्सरतालंकृतं दयारूपं द्वितीयलक्षणं भवति ।"

—श्रीशि०स० भा० ३

अर्थात् पेड़से भी अधिक सहिष्णु कहनेसे पेड़ अपने काटनेवालेको छाया-फल आदिके दानद्वारा उपकार करता है । कृष्ण भक्त उससे भी अधिक उच्च कोटिकी दयाकेद्वारा शत्रु-मित्र आदि सभीका उपकार करते हैं। इससे हरिनामके द्वारा सम्पन्न निर्मत्सरता द्वारा अलंकृत दयारूप दूसरा लक्षण होता है।"

५—क्या धैर्यहीनका हरिभजन होता है ?

"भजनशील व्यक्तियोंके लिए धैर्यकी बहुत ही आवश्यकता है। जिनमें धैर्य गुण है वे ही धीर हैं। धैर्य गुणके अभावमें मनुष्य चञ्चल हो उठता है। जो व्यक्ति अधीर हैं, वे कोई भी कार्य नहीं सकते। धैर्य गुणके द्वारा साधक अपनेको आप वश कर अन्तमें जगत्को वशमें करते हैं।"

—'धैर्य स०तो० ११।५

६—अमानी किस प्रकार हुआ जा सकता है ?

"मैं ब्राह्मण हूँ, सम्भ्रान्त हूँ, मैं शास्त्रज्ञ हूँ, मैं वैष्णव हूँ, मैं गृहत्यागी हूँ, ऐसा अभिमान न करना होगा। उस उस अवस्था में जो सम्मान है, उसे दूसरे व्यक्ति करे, मैं उस अभिमानके वश होकर दूसरोंसे पूजाकी आशा नहीं करूँगा—मैं अपनेको दीन, हीन, अकिंचन एवं तृणसे भी सुनीच जानूँगा।"

—जै० ध० ८१ अ०

७—अपनेको कैसे अमानी किया जा सकता है ?

"अपनेको दीन समझते हुए सभी व्यक्तियोंको यथायोग्य सम्मान देकर अपनेको अमानी करना होगा।"

—श्री० म० शि० १० म प०

८—देहधारी मनुष्य अपनेको किस प्रकार समझेंगे ?

"मनुष्य शरीर केवल कारागार मात्र है, इसके साथ आत्माका अनित्य सम्बन्ध है। अतएव इसमें जब तक अवस्थित रहे, तब तक ही मनुष्य अपनेको तृणसे भी नीचे समझेंगे।"

—ब्र० सू० २३ वाँ सू०

९—विरूपग्रस्तके लिए तृणसे भी सुनीच होना क्या संगत नहीं है ?

"तृणस्य वस्तुत्वाभिमानो न न्यायविरुद्धः किन्तु विकृतस्वरूपस्य ममात्र वस्तुत्वाभिमानो न सुन्दर इति तृणादपि मम सुनीचत्वं वास्तवम्।"

—श्रीशि० स० भा० ३

अर्थात् तृणका अपना वस्तुत्व अभिमान न्यायविरुद्ध नहीं है। अर्थात् स्वाभाविक है। किन्तु विकृत स्वरूपयुक्त मेरा वह वस्तुत्व

अभिमान उतना सुन्दर या उपयुक्त नहीं है। अतएव तृणसे भी मेरी सुनीचता ही मेरा वास्तव अभिमान है।

१०—'अमानी' शब्दका क्या तात्पर्य है ?

"अमानी शब्देनास्य मिथ्याभिमानशून्यतारूप तृतीय लक्षण निर्दिष्टम्। बद्धजीवानां स्थूलसूक्ष्मदेहद्वय सम्बन्ध योगैश्वर्यभोगैश्वर्य धनरूपजाति-वर्णबल प्रतिष्ठाधिकारेत्यादिजनितं यदभिमानं तन्मिथ्याजीवस्वरूपविरोधधर्मत्वात्। एवं भूतमिथ्याभिमानशून्येन सर्वदा सत्यपि तत्तदभिमानहेतौ क्षान्तिगुणभूषितेन हरिनाम कीर्त्तनीयम्। गृहे तिष्ठन् ब्राह्मणत्व दहंकारशून्यो वने तिष्ठन् वैराग्यलिंगाहंकार शून्यश्च कृष्णैकचित्तो भक्तः कृष्णनाम कीर्त्तयति।"

अर्थात् 'अमानिना' शब्दद्वारा हरिकीर्त्तनकारीकी मिथ्याभिशून्यता रूप तीसरा लक्षण कहा गया है। बद्धजीवोंके स्थूल एवं सूक्ष्म—इन दोनों देह सम्बन्ध द्वारा प्राप्त योगसम्बन्धी ऐश्वर्य, भोगोपयोगी ऐश्वर्य, धन, रूप, जाति, उच्च वर्ण, बल प्रतिष्ठा, अधिकार आदिसे उत्पन्न जो अभिमान है, वही मिथ्या है। क्यों वह जीवोंके स्वरूपधर्म या स्वधर्मका विरोधी है। उस उस अभिमानका न होना ही मिथ्या-अभिमानशून्यता है। इन सभी अभिमानोंके होनेके कारण रहने पर भी इन सभी अभिमानोंसे रहित होकर क्षान्ति (उद्वेग प्राप्त करनेका कारण रहनेपर भी उद्वेग प्राप्त न होना) गुणद्वारा भूषित होकर सर्वदा हरिनामका कीर्त्तन करना चाहिए। कृष्णैकचित्त भक्त गृहमें रहते समय ब्राह्मणत्व आदि अहंकार रहित होकर एवं गृहत्याग करनेपर वैराग्य-चिह्न-वेश आदिसे अहंकारसे शून्य होकर कृष्णनाम कीर्त्तन करते हैं।

११—'मानद' शब्दका क्या अर्थ है ?

"मानद' शब्देन यथायोग्यं सर्वेषां मानदत्वं तस्य चतुर्थं लक्षणम्। सर्वान् जीवान् कृष्णदासान् ज्ञात्वाकमपि न द्विषति प्रतिद्विषति वा। मधुर वाक्येन जगन्मंगलकार्येण च तान् सर्वान् तोषयति।"

—श्री शि० स० भा० ३

अर्थात् 'मानद' शब्द द्वारा सभी जीवोंका यथायोग्य सम्मान प्रदान समझना होगा। यह हरिकीर्त्तनकारीका चौथा लक्षण है। सभी जीवोंको कृष्णदास जानकर वह किसी से न द्वेष ही करता है और न किसीके प्रति हिंसा ही। वह मधुर वचनों एवं जगत् मंगलकारी कार्योंद्वारा सभीको प्रसन्न करता है।

१२—'यथायोग्य सम्मान दान' कहनेसे क्या समझा जाय ?

"वैष्णवोंका ही सम्मान है। वैष्णव सन्तान यदि शुद्ध वैष्णव हों, तो उनकी भक्तिके तारतम्यसे ही सम्मानका भी तारतम्य है। और यदि वैष्णव-सन्तान केवल व्यवहारिक मनुष्य मात्र हों, तो उन्हें व्यवहारिक मनुष्योंमें ही रखना होगा, वैष्णवके रूपमें सम्मान या व्यवहार नहीं करना होगा। जो व्यक्ति वैष्णव हों, उन्हें वैष्णवोचित सम्मान प्रदान करना

होगा। जो व्यक्ति वैष्णव नहीं हों, उन्हें मनुष्योचित् सम्मान देना होगा। दूसरोंको मान नहीं देने पर हरिनाममें अधिकार नहीं होता।"

—जै० ध० ८म प०

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीश्रीएकादशी-व्रत

अठारह पुराणों एवं अठारह उप-पुराणोंमें प्रायः प्रत्येकमें ही इस विषय पर बारम्बार बल देकर कहा गया है कि 'एकादशी-व्रत' सभी मनुष्य मात्रका ही कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति सभी पुराण संग्रह कर पाठ करनेमें असमर्थ हैं, वे लोग श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके परम कृपापात्र तदीय पार्षदप्रवर श्रीश्रील गोपाल भट्ट गोस्वामीपाद विरचित श्रीश्रीहरि-भक्तिविलासके द्वादश विलास रूपसे पाठ करने पर इस विषयमें अधिकाधिक रूपसे जान सकेंगे।

पतौ जीवति या नारी उपवास व्रतंचरेत्।
आयुः सा हरते भर्त्तुर्नरकंचैव गच्छति॥

इस शास्त्रीय प्रमाणका यथार्थ अर्थ न समझकर साधारण व्यक्तियोंके निकट अपना तुच्छ पाण्डित्य दिखलानेके लिए कुछ स्मार्त्त व्यक्ति लोग कहा करते हैं—"पति जीवित रहते समय स्त्रियों को एकादशी व्रत न करना चाहिए। जो रमणी ऐसा करेगी, वह अपने पतिकी परमायुका हरण कर नरकमें गमन करेगी।" ऐसा कहना सर्वथा अनुचित एवं शास्त्र-विरुद्ध है। यहाँ "व्रतंचरेत्" शब्दका अर्थ केवलमात्र एकादशी एवं भगवत्तार व्रतोंको छोड़कर दूसरे-दूसरे गौण व्रत-उपवासके सम्बन्ध में ही कहा गया है। एकादशी आदि भगवत्तार व्रत सभीके पालनीय हैं। न पालन करने पर प्रत्यवाय या न करनेका दोष होगा। अतएव स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

एकादशीव्रतं यैस्तु कृतं भक्तिसमन्वितैः।
तैश्च यज्ञा कृता सर्वे व्रतानि सफलानि च॥

भक्तिके साथ एकादशीव्रत करने से ही सभी यज्ञ एवं सभी प्रकारके व्रतोंका फल प्राप्त होता है। अतएव एकादशी नामक इस महाव्रतके साथ कदापि दूसरे-दूसरे व्रत या किसी भी पुण्य कर्मकी तुलना नहीं हो सकती। श्रीब्रह्मवैवर्त्त-पुराणके श्रीकृष्ण जन्म खण्डमें श्रीएकादशी-व्रतकी सर्वश्रेष्ठताका प्रतिपादन किया गया है। चारों वर्ण एवं विशेषकर

वैष्णव तथा ब्राह्मणोंके लिए इसकी विशेष कर्त्तव्यता कही गई है। ब्रह्म-पुराण, पद्मपुराण बृहन्नारदीय पुराण, एवं भविष्य-पुराणमें विशेषकर एकादशीकी महिमा एवं उत्पत्तिका विषय वर्णन किया गया है।

देवपुरके अधिपति महाभागवत रुक्मांगद राजाने उनकी हस्तीशालाके सर्वप्रधान हाथीके पीठपर बड़ा सा वाद्य स्थापन कर उसका वादन करते हुए उनके राज्यमें यह घोषणा की थी—

अष्टाब्दोऽधिको मर्त्योऽशीति नैव पूर्यते।
यो भुङ्क्ते मामके राष्ट्रे विष्णोरहनि पापकृत्॥
स मे वध्यश्च निर्वास्यो देशतः कालतश्च मे।
एतस्मात् कारणाद्विप्रा एकादश्यामुपोषणम्॥
कुर्यान्नरो वा नारी वा पक्षयोरुभयोरपि॥
(श्रीनारदीय पुराण)

जिनकी आयु आठ वर्षसे अधिक या अस्सी वर्षसे कम है, ऐसे कोई व्यक्ति यदि मेरे राज्य में एकादशीके दिन अन्न ग्रहण करें, तो यह मेरा वध्य है, उसे मेरे राज्यसे निर्वासित किया जायगा। इसलिए क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी व्यक्ति ही शुक्ल एवं कृष्ण इन दोनों पक्षों की एकादशीमें ही उपवास करेंगे। भगवान्‌ने भी स्वयं कहा है—

भूयो भूयो दृढ़ा वाणी श्रूयतां श्रूयतां जनाः।
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्य हरेर्दिने॥
(पद्मपुराण, क्रियायोगसार १४।५३)

मैं बारम्बार दृढ़ भावसे कहता हूँ, हे सज्जनों! तुम लोग सुनो। श्रीहरिवासरके दिन तुम लोग कदापि अन्न भक्षण न करना।

यो भुंक्ते वासरे विष्णोर्ज्ञेयः पश्वधिको सः।
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ३८।६०)

जो व्यक्ति एकादशीके दिन भोजन करे वह पशु अपेक्षा भी अधम है।

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राप्ते हरिवासरे॥
(बृहन्नारदीय पुराण, २१।८)

ब्रह्महत्या आदि सभी उत्कट पाप ही एकादशीके दिन अन्नका आश्रय लेकर वर्त्तमान रहते हैं। इसलिए एकादशीमें अन्न-भक्षणकारीके लिए कदापि पापसे परित्राण होनेका उपाय नहीं है।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः।
एकादश्यां हि भुञ्जानो भुङ्क्ते गोमांसमेव हि॥
(श्रीहरिभक्तिविलास, १२वाँ विलास, १९ श्लोक)

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या यति जो कोई आश्रयके ही क्यों न हो, एकादशीमें अन्न भक्षण करने पर उसको गोमांस भक्षण करना होता है।

मातृहाः पितृहाश्चैव भ्रातृहा गुरुहास्तथा।
एकादश्यान्तु यो भुङ्क्ते विष्णुलोकाच्च्युतो-भवेत्॥
(स्कन्द पुराण, श्रीहरिभक्तिविलास १२ विलासधृत)

एकादशी में अन्न भोजनसे माता, पिता, भ्राता एवं गुरु-हत्या का पाप होता है। इस लिए वह अन्न भोजनकारी (दूसरे शब्दों में कहने

पर भी) श्रीविष्णुलोकमें गमन करनेमें समर्थ नहीं होता।

श्रीब्रह्म वैवर्त्त-पुराणमें श्रीनारायण भगवान्‌ने देवर्षि नारदजीसे कहा है—

सत्यं सर्वाणि पापानि ब्रह्महत्यादि कानि च।
सन्त्येवौदनमाश्रित्य श्रीकृष्णव्रतवासरे ॥
भुङ्क्ते तानि च सर्वाणि यो भुङ्क्ते तत्र मंदधीः।
इहातिपातकी लोके यास्यन्ते नरकं ध्रुवम् ॥
एकादशी-प्रमाणानि युग संख्याकृतानि च।
कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा चाण्डालतां व्रजेत्॥
गलित-व्याधि-युक्तश्च ततः सप्तसुजन्मसु।
पश्चान्मुक्तो भवेत् पापादित्याह कमलोद्भवः ॥
(श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड २६ अ०)

श्रीहरिवासर या एकादशीमें ब्रह्महत्या आदि सभी प्रकारके पाप ही अन्नके आश्रयमें रहते हैं। जो मन्दबुद्धि व्यक्ति एकादशीमें अन्न भोजन करे, वह इस लोकमें महापापी कहलाता है एवं मृत्युके पश्चात् एकादशीके परिमित युगों तक कुंभीपाक नरकमें अवस्थान करता है। वह चण्डाल योनिमें जन्म ग्रहण कर सात जन्मों तक गलित कुष्ठव्याधियुक्त होकर बहुत यन्त्रणा भोग करनेके पश्चात् मुक्त हो सकता है यह बात स्वयं कमलयोनि ब्रह्माने कही है।

ब्रह्महत्यादि पापानां कथंचिन्निष्कृतिर्भवेत्।
एकादश्यान्तु यो भुङ्क्ते निष्कृतिर्नास्ति कुत्रचित्॥
(बृहन्नारदीय पुराण २१।६)

ब्रह्म हत्यादि महा महापापसे भी किसी प्रकारसे छुटकारा पाया जा सकता है, किन्तु एकादशीमें अन्न भोजनकारी व्यक्तिको कदापि नरक-यातनासे छुटकारा नहीं मिलता। मनुष्य कैसे भी पापकयुक्त क्यों न हों, एकादशीके उपवास द्वारा परमपद प्राप्त करता है। एकादशी अत्यन्त पुण्यजनक एवं श्रीविष्णुका प्रिय है। अतएव संसारसे जो सभी व्यक्ति मुक्ति पानेकी इच्छा रखते हैं, वे एकादशी-तिथिकी सेवा करें।

और भी कहा गया है—

एकादशेन्द्रियैर्पापं यत्कृतं वैश्य मानवैः।
एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं व्रजेत् ॥
(पद्मपुराण स्वर्गखण्ड)

हे वैश्य! मनुष्य लोग एकादश इन्द्रियों अर्थात् आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा, वाक्, पाणि, पाद, गुह्य, उपस्थ एवं मनद्वारा जो सभी पाप करते हैं, वे सभी ही एकादशीके उपवास द्वारा विलीन हो जाते हैं। अतएव एकादशीकी अपेक्षा परलोक-प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन नहीं है।

गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्नि यतिस्तथा।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥
(अग्निपुराण, श्रीह० भ० वि० १२।३०)

गृहस्थ, ब्रह्मचारी आहिताग्नि (वानप्रस्थ) एवं संन्यासी—ये सभी शुक्ल एवं कृष्ण—दोनों पक्षोंकी एकादशीमें अन्न ग्रहण नहीं करेंगे।

यथा शुक्ला तथा कृष्ण विशेषो नास्ति कश्चन।
(विष्णु-संहिता)
विशेषं कुरुते यस्तु पितृहा स प्रकीर्त्तितः।

(गरुड़-पुराण, श्री० ह० भ० वि०)

शुक्ल एवं कृष्ण— इन दोनों पक्षोंकी एकादशी ही समान हैं, इनमें कुछ भी भेद नहीं है। जो व्यक्ति भेद समझे, उसे पितृ-हत्या का पाप होता है।

एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि।

(विष्णु-संहिता)

स्त्रियाँ रजस्वला होनेपर भी एकादशीके दिन अन्न भोजन नहीं करेंगी।

वर्णानां आश्रमाणाचैव स्त्रीणांच वरवर्णिनि।
एकादश्युवासस्तु कर्त्तव्यो नात्र संशयः॥

(पद्मपुराण, उत्तर खण्ड)

शिवजीने पार्वतीसे कहा— हे पार्वति! सभी वर्णों, सभी आश्रमों एवं सभी स्त्रियोंके लिए ही एकादशी कर्त्तव्य है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

अश्वमेध सहस्राणि वाजपेय शतानि च।
एकादश्युपवासस्य कलांनार्हन्ति षोडशीम्॥

(पद्मपुराण, उत्तर खण्ड)

सहस्रों अश्वमेध यज्ञ, सैकड़ों वाजपेय यज्ञ एकादशी उपवासके सोलहवें कलाके बराबर भी नहीं हैं।

एकादशीं परित्यज्य जो ह्यन्यद्व्रतमाचरेत्।
स करस्थं महत् राज्यं त्यक्त्वा भैक्ष्यं तु याचते॥

(पद्मपुराण, उत्तम खण्ड)

जो व्यक्ति एकादशीको छोड़कर दूसरे-दूसरे व्रतोंका आचरण करे, वह हाथमें स्थित महान् राज्यका परित्याग कर भिक्षाकी याचना करनेके समान है।

मातेव सर्वबालानांमौषधं रोगिणामिव।
रक्षार्थं सर्वलोकानां निर्मितैकादशी तिथिः॥

(पद्मपुराण, पाताल खण्ड)

माता जिस प्रकार बालकोंकी रक्षा करती है, औषध रोगियोंकी जिस प्रकार रक्षा करता है, उसी प्रकार सभी व्यक्तियोंकी रक्षा करनेके लिए एकादशी तिथिकी उत्पत्ति हुई है।

सपुत्रश्च सभार्यश्च स्वजनैर्भक्तिसंयुतः॥
एकादशीमुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि॥

(विष्णुधर्मोत्तर खण्ड)

अपने पुत्र, भार्या एवं स्वजनोंके साथ भक्तिके साथ शुक्ल एवं कृष्ण—दोनों पक्षोंकी एकादशीमें उपवास करेंगे।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाचैव योषिताम्।
मोक्षदं कुर्वतां भक्त्या विष्णोः प्रियतरं द्विजाः॥

(बृहन्नारदीय पुराण, २१।२)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं स्त्रियाँ— ये सभी लोग ही श्रीविष्णुके परम-प्रिय एकादशी-व्रतका पालन करनेपर मोक्ष अर्थात् श्रीहरिका दास्य प्राप्त कर सकते हैं।

एकादश्युपवासं यः सदा तु कुरुते नरः।
स याति परमं स्थानं यत्र देवो हरिःस्थितः॥

(श्रीह० भ० वि० १२।१७-धृत
अग्नि पुराणवचन)

जो व्यक्ति सदा एकादशीका उपवास करें, वह उस स्थानमें गमन करता है, जहाँ स्वयं श्रीहरि अवस्थित हैं।

एकादशीव्रतं भक्त्या यः करोति नरः सदाः।
स याति लोकं ब्रजति याति विष्णु-स्वरूपताम्॥

(गरुड़-पुराण)

जो व्यक्ति भक्तिके साथ एकादशी व्रत करे, वह विष्णुस्वरूप (विष्णु का पार्षदत्व) प्राप्तकर श्रीविष्णुलोकमें गमन करता है।

एकादशीव्रतं यस्तु भक्तिमान् कुरुते नरः।
स याति परमं स्थानं यत्र देवो हरिः स्वयम्॥

(भा० १०।२८।१ की सिद्धांत-प्रदीप-टीका)

जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक एकादशी व्रत करे, वहाँ स्वयं श्रीहरि अवस्थित हैं। वह व्यक्ति परम दुर्लभ गोलोक धाममें गमन करता है।

एकादशी नामक महान् व्रतका पालन जो व्यक्ति करें वे बिना किसी परिश्रमके इन्द्र, चन्द्र, वायु, वरुण, कुबेर, यम, अग्नि, शिवजी आदि देवताओं द्वारा नित्य वांछित परम रमणीय सुदुर्लभ नित्यानन्दमय नित्यधाम गोलोकमें जाकर श्रीभगवान्‌के चरणारविन्दोंके निकट वास कर सकते हैं। अतएव और अधिक क्या कहा जाए?

स्वयं भगवान्‌ने श्रीमुखसे कहा है—

एकादशी-व्रतं ये च भक्तिभावेन कुर्वते।
गायन्ति मम नामानि ज्ञेयास्ते वैष्णवजनाः॥

जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक एकादशी व्रत पालन करें एवं श्रीहरिनाम-कीर्तन करें, उन्हें वैष्णव जानना होगा।

—(श्रीगौड़ीय पत्रिकासे संग्रहीत)

वर्णाश्रम-विधि

सूक्ष्मदर्शी आर्यऋषियोंने बद्ध मनुष्योंके स्वभाव या प्रवृत्तिको चार भागोंमें विभक्त किया है एवं उसके साथ-साथ उनके चार प्रकारके अवस्थानका भी निर्णय किया है। मुक्तपुरुष इन चार प्रकारके स्वभाव एवं अवस्थान (स्थिति) से अतीत हैं। वे लोग लोक शिक्षाके लिए सर्वश्रेष्ठ स्वभाव एवं किसी एक आश्रमको स्वीकार कर भी सकते हैं एवं नहीं भी कर सकते हैं। जिस स्वभावमें संयम, सदाचार, सत्य, सरलता, आत्मतत्त्वालोचना, भगवान्‌के प्रति भक्ति आदि वृत्तियाँ स्पष्ट रूपसे देखी जाय, उसे ब्रह्म-स्वभाव कहा जाता है। जिस स्वभावमें वीरता, साहस, तेजः, पालन एवं शासन-स्पृहाकी प्रबलता देखी जाय, उसे क्षत्र-स्वभाव कहा जाता है। जिस स्वभावमें कृषिकार्य वाणिज्य-प्रवृत्तिकी अधिकता देखी जाय, उसे वैश्य-स्वभाव कहा जाता है। जिस स्वभावमें दूसरोंकी सेवाद्वारा उदर प्रतिपालन-वृत्ति एवं शोक-स्नेहादिमें अत्यन्त अभिनिवेश देखा जाय, उसे ऋषियोंने शूद्र-स्वभाव कहा है।

पहले कहे गये तीन प्रकारके स्वभावोंमें

सबसे पहला ब्रह्म स्वभाव ही सर्वोत्तम है एवं चतुर्थ अर्थात् शूद्र-स्वभाव ही अधम है। इसको छोड़कर दूसरा एक स्वभाव 'अन्त्यज-स्वभाव' कहा गया है। अत्यन्त निकृष्ट स्वभाव होने के कारण इस स्वभावको संख्या द्वारा ग्रहण नहीं किया गया है। इसे सर्व-बहिष्कृत या सभीके लिए त्याज्य स्वभाव कहकर निर्द्धारण किया गया है। अन्त्यज स्वभावमें कलहप्रियता, स्वार्थपरता, उदर-लाम्पट्य, परस्त्री-लाम्पट्य, परद्रव्य-लाम्पट्य, मिथ्या, कपटता, ताश-पाश आदि जुआके खेल एवं कुत्सित (घृणीत) आमोद-प्रमोदमें रति, नशा की वशवर्त्तिता आदि वृत्तियाँ देखी जाती हैं।

ये चारों स्वभाव जिससे परिवर्द्धित होकर उत्तरोत्तर सर्वोत्तम निर्गुण स्वरूपता प्राप्त कर सके, इसलिए वर्णाश्रित-कर्मकी व्यवस्था की गई है। इसलिए प्राचीन इतिहासमें देखा जाता है कि यथोचित वर्ण धर्म पालन करते करते कोई कोई उन्नत-वर्ण में आरूढ़ हुए हैं एवं कोई कोई अपने अपने वर्णधर्मके पालनमें उदासीनताके कारण निम्न वर्णमें पहुँचे हैं। हरिवंशके १० वें अध्यायमें कहा गया है—'नाभागारिष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः।' ११ वें अध्यायमें कहा गया है—'नाभागादिष्ट पुत्रो द्वौ वैश्यो ब्राह्मणतां गतौ।' नाभाग एवं अरिष्ट पुत्र आदि क्षत्रिय होकर कर्मवशसे वैश्यत्व प्राप्त हुए थे। एवं वैश्य ब्राह्मण हुए थे, ऐसे बहुतसे उदाहरण देखे जाते हैं। वर्ण-धर्म पालन करना हो, तो किसी भी अवस्थानमें अवस्थित होना होगा। इसलिए ऋषियोंने चार अवस्थान या आश्रम का निर्णय किया है। जिस अवस्थानमें वीर्य-धारण, स्वाध्याय, गुरुसेवा आदि द्वारा शरीर, मन, मेधा एवं बुद्धि-वृत्ति आदि सभी परिवर्द्धित (विशेषरूपसे वृद्धि प्राप्त) होकर स्वरूपकी उपलब्धिमें सहायक स्वरूप होती है, उसे ब्रह्मचर्याश्रम कहा जाता है। यह आश्रम दूसरे-सभी आश्रमोंका भित्ति-स्वरूप है। इस आश्रमका अतिक्रमण (उल्लंघन)कर दूसरे-दूसरे आश्रम ग्रहण करनेपर विपर्यय (अव्यवस्था) होता है। कोई आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रह सकते हैं अथवा प्रवृत्तिमूला रुचिकी अधिकता होनेपर आचार्यके आदेशसे समावर्त्तन कर गृहमें वास कर सकते हैं। इस गार्हस्थ्याश्रमका उद्देश्य प्रवृत्तिका संकोच कर क्रमशः निवृत्ति-पथ पर चलना। प्रवृत्तिको निवृत्त करनेकी चेष्टा न कर उसमें ईंधन देने पर वह असीम उत्पातकी हेतु स्वरूप होकर गृहव्रत या गृहमेधी धर्ममें परिणत होता है। गृहस्थाश्रम भगवद्भजन, देव-ब्राह्मणके प्रति भक्ति, आतिथ्य सत्कार, साधुसेवा आदि द्वारा शोभायमान होना चाहिए। गृहस्थाश्रम दूसरे-दूसरे आश्रमोंका उपजीव्य (जीवन-रक्षाका आधार) होगा। मनुष्यके २५ वर्षसे ५० वर्ष तक अर्थात् २५ वर्ष तक इस आश्रममें रहकर निवृत्ति-धर्म अवलम्बन कर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करनेकी व्यवस्था है। आजीवन गृहस्थ-आश्रममें वास एकमात्र शूद्र अर्थात् शोक-मोहादिमें आच्छन्न अधम वर्णके लिए ही है। सर्वबन्धनका परित्याग कर परिव्राजक एवं धर्म-प्रचारकरूप संन्यास-आश्रममें अधिकार शोक-मोहाच्छन्न शूद्रका नहीं है।

निर्विष्टचित्तसे विचार कर देखनेपर देखा जा सकता है कि आर्य ऋषियोंका वर्ण एवं आश्रम विभाग सम्पूर्ण वैज्ञानिक भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित है। इसलिए जिस स्थानमें मानवके स्वभाव एवं अधिकारके प्रति विशेष लक्ष्य न रखकर वर्ण एवं आश्रमका निर्णय हो, वहाँ बहुत प्रकारके उत्पात आकर वर्णाश्रम-धर्मकी सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रणालीका ध्वंस कर देंगे एवं उससे जगत्का मंगल न होकर सभी अमंगल होंगे। जिस समयमें इस प्रकारके स्वभाव, प्रवृत्ति एवं लक्षणादिका विचार कर भारतवर्षमें वर्ण एवं आश्रमका निर्णय होता था, उस समय भारतवर्षका सौभाग्य-सूर्य मध्याह्न-गगनमें उदित रहकर उज्ज्वल-किरण-प्रदान द्वारा सभी जगत्वासियोंकी श्रद्धाका आकर्षण कर रहा था। उस समय यथार्थ ब्राह्मणोंके सामगानसे सर्वस्थान मुखरित होते थे, उनके आदर्श चरित्र के निकट महाराज-चक्रवर्तीके रत्नखचित मुकुट शोभित सिर प्रणत होते थे, प्रजा-वर्ग शान्ति पूर्वक वास करते थे। रोम, ग्रीस, मिश्र आदि प्राचीन जातिके व्यक्ति भारतको वाणिज्य-शिक्षागुरुके रूपमें वरण किये थे।

महाभारतादि शास्त्रोंमें भी देखा जाता है कि पहले ब्रह्मा द्वारा रचित जगत्में सभी ही ब्राह्मण थे। पश्चात् स्वभावकी अभिव्यक्ति रूप कर्मद्वारा वर्णोंका निरूपण होता था। महाभारतके शान्तिपर्व, मोक्षधर्म, १८८ अध्याय में कहा गया है—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥

श्रीमद्भागवत्में भी देखा जाता है कि सत्ययुगमें हंस नामक एकमात्र वर्ण था। पश्चात् त्रेतायुगमें वर्णका विभाग हुआ।

अतात्त्विक, असारग्राही व्यक्तियोंका कहना है कि सबसे पहले स्वभावके अनुसार विराट पुरुषसे चारों वर्ण प्रादुर्भूत होकर उसके पश्चात् वंश-परम्परासे वही भगवान्के द्वारा निर्देश किये गए विधान रूपसे चल रहा है एवं चलता रहेगा। किन्तु शास्त्रके सारग्राही मर्म-जाननेवाले व्यक्ति किसी भी प्रकारसे इस अशास्त्रीय अनुमानको ग्रहण नहीं कर सकते। क्योंकि शास्त्रोंके बारम्बार आदेश एवं पूर्व-पूर्व श्रेष्ठ व्यक्तियोंके अवलम्ब आचारके उदाहरण—ये दोनों ही यही प्रमाणित करते हैं कि एकमात्र स्वभावसे ही सब समय वर्ण का निरूपण किया गया है। विज्ञान एवं सद्युक्ति भी इसी का समर्थन करती है। यदि एकबार निर्देश किये गये वर्ण-विभागके अनुसार ही वर्ण-विभाग होनेकी व्यवस्था होती, तो श्रीमद्भागवतमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रके स्वभावकी तालिका देकर पश्चात् ऐसा आदेश नहीं रहता—

"यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥"

श्रीधर-स्वामीपादकी टीका—"शमादिभिरेव ब्राह्मणादि व्यवहारो मुख्यः, न जातिमात्रादिति यस्येति यद्यदि अन्यत्र वर्णान्तरेऽपि दृश्येत तद्वर्णान्तरं तेनैव लक्षणनिमित्तेनैव वर्णेन निर्दिशेत् न तु जाति निमित्तेन।" अर्थात् जो जो वर्ण के जो सभी

लक्षण कहे गये हैं, यदि अन्य वर्णोत्पन्न व्यक्ति में भी किसी भी एक विशेष वर्णका लक्षण देखा जाय, तो उसका जातिके कारणसे वर्ण-निरूपण न कर उस विशेष वर्ण-लक्षणानुसार से ही उसका वर्ण विशेष रूपसे लक्षणों द्वारा निरूपण करना होगा। प्राचीन इतिहासादिमें भी देख जाता है कि सन्तान उपयुक्त वयस प्राप्त होने पर कुलके वृद्ध व्यक्ति, कुलाचार्य भूस्वामी, ग्रामके पण्डित व्यक्ति इस सन्तानका स्वभाव विचार कर वर्ण निरूपण करते थे। तब वर्ण-निरूपण समयमें यही विचार होता था कि पुत्र पिताके वर्ण प्राप्त करनेका योग्य है या नहीं। यदि योग्य हो, तो उसे पिताके गोत्रमें ही निर्देश किया जाता था एवं अयोग्य होने पर उसे स्वभावके अनुसार दूसरे वर्णमें निर्देश किया जाता था।

किन्तु आजकल अनुपयुक्त, स्वार्थान्ध, व्यवसायी, पुर-अहितकारी 'पुरोहित' नामधारी व्यक्तियोंके हाथोंमें यह गुरुतर कार्य भार अर्पित होनेके कारण पिताके गोत्रके अनुसारसे पुत्रका भी स्वभाव होगा—इस अनुमान बलसे ही वर्णका निरूपण होनेके कारण समाजमें अनावश्यक एवं अश्लील राशिका संचय हो रहा है। पापका परिमाण पूर्णमात्रा प्राप्त करने पर भगवान् कभी स्वयं आते हैं या किसी भी महान् जीवमें शक्तिका आवेश कर उन्हें जगत्में प्रेरण करते हैं। अतएव समाजके इन दुर्दिनोंमें भी हृदयमें आशा का संचार होता है कि शीघ्र ही दैव वर्णाश्रय-धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा होगी। वर्णाश्रम-धर्म बहुत दिनों तक विशुद्ध रूपसे चल रहा था। किन्तु कुलाचार्योंके वर्ण-निर्णयमें असामर्थ्यके कारण क्षत्र-स्वभाव जमदग्नि एवं उनके पुत्र परशुरामको ब्राह्मणके रूपमें निरूपण करने के कारण वर्ण-व्यभिचारका सूत्रपात हुआ ब्राह्मणों एवं क्षत्रियोंमें परस्पर विरोध उत्पन्न हुआ एवं उसकी प्रतिक्रिया रूपसे जन्मगत वर्ण-व्यवस्था दृढ़मूल होने लगी। मन्वादि स्मृति शास्त्रोंमें अबौध मतवादने प्रवेश किया। क्षत्रियोंने ब्राह्मण-वर्ण प्राप्त करनेकी असंभावना देखकर बौद्धधर्मका प्रवर्त्तन कर ब्राह्मणोंके विनाशका उपाय निकाला। वणिक् वृत्तिहीन वैश्य लोग जैन धर्मके प्रचारमें व्रती हुए, भारतवर्षका वाणिज्य लुप्त होने लगा एवं शूद्र लोग नाना प्रकारसे अवैध दस्युवृत्ति ग्रहण करने लगे। अतएव जातिगत वर्णाभिमान विशेषरूपसे दृढ़ता प्राप्त करने लगा।

छान्दोग्य-श्रुतिमें देखा जाता है कि हारिद्रुमत गौतमने जबालाके पुत्र सत्यकामके पिताका गोत्र न जानकर एवं माताका चरित्र दोष श्रवण कर भी बालककी सरलता एवं सत्यनिष्ठा देखकर उसे ब्राह्मणका संस्कार प्रदान किया था। जानश्रुति एवं चित्ररथके उदाहरण भी स्वभावसे ही जो एकमात्र प्राचीनकालमें वर्ण निरूपण होता था, इसका साक्षी प्रदान करते हैं। सामवेदके वज्रसूचिकोपनिषद्में भी इसीका समर्थन किया गया है।

"एवमुक्तलक्षणो यः स एव ब्राह्मण इति श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासानामभिप्रायः। अन्यथा

हि ब्राह्मणत्व-सिद्धिर्नास्त्येव ।" अर्थात् इन सभी-स्वभाव या लक्षणोंसे युक्त व्यक्ति ही ब्राह्मण है। यही श्रुति (वेद), स्मृति, पुराण एवं इतिहासका अभिप्राय है। निश्चय ही और किसी भी प्रकारसे ब्राह्मणत्व सिद्ध नहीं होता।

यदि वंशके अनुसार ही वर्णका निर्देश होता, तो महाभारतके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीनीलकण्ठ सत्यप्रिय ऋषिके मुखसे प्रकाशित श्रुतिमन्त्र उद्धार कर यह नहीं दिखलाते—"न चैतद्विद्मो ब्राह्मणाः स्मो वयमब्राह्मणा वेति।" अर्थात् यह नहीं जानते कि हम ब्राह्मण हैं या अब्राह्मण हैं। मनुने गुणविहीन वंशगत वर्णके अभिमानकी सारहीनता दिखलानेके लिए ऐसे वर्णाभिमानीकी काष्ठमय हाथी, चर्ममय मृगके साथ तुलना की है।

और कोई कोई व्यक्ति कहा करते हैं कि दूसरे वर्णमें ब्राह्मणका गुण रहनेपर उसे ब्राह्मणके समान समझना एवं उसके समान सम्मान देना उचित है, किन्तु ब्राह्मणके संस्कार से संस्कृत करना उचित नहीं है। थोड़ेसे भी बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसे कहनेवाले व्यक्तियोंको मत्सरतापूर्ण कपटता अनायास ही जान सकते हैं। श्रीमद्भागवतके "विनिर्दिशेत्"—विशेष रूपसे निर्देश करना चाहिए—यह बात भी मत्सरतासे बहरे बने व्यक्तियोंके कानमें प्रवेश नहीं करती। हारिद्रुमत गौतम क्या सत्यकाम को मुखमें ब्राह्मण या ब्राह्मणतुल्य कहकर चुप हो गये थे? या उसे उपनयन-संस्कारके द्वारा संस्कृत कर वेदमें उसे अधिकार प्रदान किया था? राजा द्वारा नियुक्त किए गए विचारक ही राय पेश कर सकते हैं, दूसरेका सामर्थ्य नहीं है। उसी प्रकार स्वतन्त्र आचार्य या साधु पुरुष युगके प्रयोजनके अनुसार जीवोंके कल्याण के लिए किसी एक विशेष विधानका प्रचलन कर सकते हैं, यह सामर्थ्य भगवान्द्वारा प्रदत्त है। वह मनगढ़न्त मात्सर्यपूर्ण चेष्टा नहीं है। शास्त्रोंका कहना है—

'समयश्चापि साधूनां प्रमाणं वेदवद्भवेत्।' अर्थात् वेदका प्रमाण जिस प्रकार स्वतन्त्र है, श्रेष्ठ साधुओंका आदेश भी उसी प्रकार प्रमाणिक है।

—(साप्ताहिक गौड़ीयसे अनूदित)

श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित धर्म

निखिल चेतनोंका जो एकमात्र नित्य धर्म है या सनातन धर्म है, उसीका श्रीचैतन्य महाप्रभुने प्रचार किया है। 'धर्म' शब्द का अर्थ 'स्वभाव' है। शुद्ध चेतनका जो नित्य

स्वभाव है, वही नित्य धर्म है। नित्य वस्तुका ही दूसरा नाम सनातन या सदातन है। अनित्य धर्म 'सनातन' शब्द वाच्य नहीं हो सकता। पूर्णचेतन भगवद्वस्तु नित्य है, पूर्णचेतनके विभिन्नांश-समूह नित्य हैं एवं उनमें जो परस्पर सम्बन्ध है, वह भी नित्य है। पूर्णचेतन एवं अणुचेतनमें नित्य सम्बन्धगत जो नित्य स्वभाव है, वही नित्य धर्म या सनातन धर्म है। पूर्णचेतन निखिल अणुचेतनोंका निरंतर ही अप्रतिहतरूपसे (बिना किसी बाधाके) आकर्षण करते हैं। उस आकर्षण रूप नित्य स्वभावमें प्रबुद्ध रहना ही स्वास्थ्य, स्वभाव या सनातन धर्ममें प्रतिष्ठित रहना है। वह स्वाभाविक आकर्षण ही अनुराग, प्रेम या भक्ति पदवाच्य है। शुद्ध जीव या अनावृत चेतनका यह आकर्षण रूप स्वभावको छोड़कर दूसरा कोई स्वभाव या धर्म रह नहीं सकता। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने निखिल शुद्ध जीवात्मा या मुक्तचेतनका जो एकमात्र धर्म है, उसीका प्रचार किया है। शुद्ध जीवात्मा बाहरी रूपसे तात्कालिक देश-काल-पात्रादिका विभिन्न आवरण या व्यवहार क्यों न ग्रहण करें, शुद्धचेतनका नित्य स्वभाव ही उसका धर्म है। बद्ध-जीव या आवृत चेतनका विभिन्न जड़ देश-काल-पात्रके अनुसार विभिन्न अनित्य स्वभाव या धर्म हो पड़ते हैं। क्योंकि बद्धावस्था अनित्य है, बद्धावस्थामें जो विकृत स्वभावकी विभिन्नता है, वह भी अनित्य है। बद्धावस्थामें विकृत स्वभाव या रुचिके द्वारा चालित होकर जो सभी असंख्य देह या मनोधर्म उदित हुए हैं, हो रहे हैं या होंगे, वे श्रीचैतन्य महाप्रभुद्वारा प्रचारित धर्मके विषय नहीं हैं। शुद्ध जीवका जो एकमात्र स्वभाव है, उसीकी बात उन्होंने कही है। उसे दूसरी भाषामें 'वैष्णव-धर्म' कहा जा सकता है। इसलिए विभुचैतन्य भगवान्‌के प्रति अणुचेतन का नित्य सम्बन्धगत धर्म ही वैष्णव धर्म है। बहुतसे व्यक्तियोंकी यह धारणा है कि 'वैष्णव-धर्म' तथाकथित हिन्दू-धर्मका एक शाखा-विशेष या मतवाद-विशेष है। किन्तु ऐसी विकृत धारणा या मनुष्य जातिके इन्द्रिय-तर्पणके अधीन कोई धर्मका श्रीचैतन्य महाप्रभु ने प्रचार नहीं किया। उन्होंने तथाकथित हिन्दु-धर्म या अहिन्दु-धर्मका प्रचार नहीं किया। उन्होंने निखिल शुद्धचेतनका एकमात्र नित्य-धर्म प्रचार किया है।

तथाकथित हिन्दु धर्म या हिन्दु शब्द कोई वैदिक परिभाषा नहीं है। किन्तु 'वैष्णव' शब्दका यथेष्ट प्रयोग वेदादि शास्त्रोंमें है। 'सिंधु' शब्दको प्राचीन पारसी लोग 'हिन्दु' शब्दसे उच्चारण करते थे। बहुतसे व्यक्तियों के मतानुसार 'सिन्धु' देशके अधिवासी लोग 'हिन्दु' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। परवर्तीकालमें दूसरोंसे अपनी विशेषता दिखलानेके लिए 'हिन्दु' नामसे परिचय प्रदान किया जाने लगा। इसलिए 'हिन्दु' शब्दमें परमेश्वरकी सम्बन्ध सूचनाकी अपेक्षा देशगत या जड़ीय साम्प्रदायिक प्रतियोगितागत तात्पर्य ही अधिकतर प्रबल है। किन्तु 'वैष्णव' या 'कार्ष्ण' आदि शब्द वैसे शब्द नहीं हैं। 'वैष्णव' या 'कार्ष्ण' शब्द उच्चारण करने

मात्रसे ही विष्णु या कृष्णका सम्बन्ध अपरिहार्य रूपसे हृदयमें उदित होता है। "वैष्णव" शब्द सविशेष परमेश्वरके सम्बन्धसे युक्त वस्तु को बतलाता है। 'वैष्णव' शब्दमें कोई साम्प्रदायिक प्रतियोगितागत भाव बिलकुल ही प्रकाशित नहीं होता। क्योंकि 'विष्णु' या 'वैष्णव' शब्द अप्रतिद्वन्द्वी है। 'वैष्णव' शब्द कहनेसे किसी वस्तुकी स्वरूपगत सत्ता सम्पूर्ण रूपसे कहना हो जाता है। क्योंकि यह शब्द समस्त वस्तुओंके वास्तव स्वरूपको लेकर वर्त्तमान है।

सारे चेतनोंका धर्म—आत्मधर्म, जैव-धर्म नामान्तरसे भक्ति-धर्म या भागवत-धर्म कहलाता है। वैष्णव धर्म अनादि कालसे ही गोलोक, भूलोक सर्वत्र नित्यकाल वर्त्तमान है। यह आदि एवं अनादि है। यही वैष्णव-धर्म ही सभी धर्मोंका अविकृत मूल बिम्ब स्वरूप है—सभी धर्मोंकी अविकृत अन्तिम सीमा है। दूसरे-दूसरे धर्मोंमें वैष्णव-धर्म रूप मूल बिम्ब का विकृत-प्रतिफलन या छाया प्रतिबिम्ब है। कुछ तो असम्यक्, आंशिक या खण्ड परिचय-प्रदानकारी सोपान-विशेष हैं। तथाकथित हिन्दू-धर्म आदि वैष्णव-धर्मसे उत्पन्न होनेके कारण आत्म-धर्मका ही विकृत अंश-विशेष है।

भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रकारके सामाजिक-लौकिक या प्रच्छन्न देह-धर्म, मनो-धर्म आदि ही 'हिन्दु-धर्म' नामसे साधारण व्यक्तियोंके निकट परिचय प्राप्त किये हैं। कहीं तो 'कमलाकर' आदि लौकिक स्मार्त्तोंका शासित धर्म और तो कहीं हरिहर भट्टाचार्यके पुत्र वैष्णवेतर स्मार्त्त रघुनन्दन भट्टाचार्य शासित कर्म-जड़ स्मार्त्त धर्म ही 'हिन्दु-धर्म' नामसे साधारण व्यक्तियों के निकट प्रचारित है। और तो कहीं मायावाद-मतवाद— तथाकथित "वैदान्तिक धर्म" ही 'हिन्दु-धर्म' नामसे घोषित है। मायावादद्वारा कर्मजड़-मतवादका तात्कालिक विरोधी भाव लौकिक रूपसे प्रकाश करने पर भी नवीन संस्करणका जो मायावाद वर्त्तमान समयमें समाजमें प्रचारित हुआ है, वह केवलमात्र कर्मजड़स्मार्त्तवादका गुप्त बन्धुमात्र ही नहीं है, बल्कि अनेक स्थानोंमें स्पष्ट बन्धु रूपसे प्रकाशित है। नवीन संस्करणके मायावादी इस समय स्मार्त्त रघुनन्दनके पदांकित पथमें विचरण कर पानेपर अपनेको उन्नत हिन्दु-धर्मपरायण कहकर आत्म-प्रशंसा करते हैं। पुरातन या आदि संस्करणका मायावाद किन्तु कर्मजड़ स्मार्त्तवादका इस प्रकार स्पष्ट मित्र एवं अनुगत नहीं था। जो भी हो, इस प्रकारका कर्म जड़वाद या मायावाद जो वर्त्तमान समयमें 'हिन्दु-धर्म' कहकर अपना परिचय देता है एवं विशेषकर कर्मजड़ स्मार्त्तवाद जो अपनेका अद्वैत वर्णाश्रम धर्मका प्रचारक कहकर अभिमान करता है, इन सबका विचार बहुत ही सूक्ष्म रूपसे विश्लेषण करनेपर देखा जाता है कि ये सभी देहधर्म या मनोधर्म मात्र हैं, वे नित्य या सनातन धर्म नहीं हैं। क्योंकि कर्मजड़ स्मार्त्त धर्म ऐहिक एवं लौकिक आचार-व्यवहारके प्रति निष्ठा या अत्यधिक आग्रह दिखाकर आत्माके साक्षात् अनुशीलनका परित्याग कर

देता है। आत्माके अनुशीलनकी जो एक छलनामयी प्रतिज्ञा स्मार्त धर्मके धुरन्धर कपट व्यक्तियोंके मुखमें प्रकाश पाती है, वह कपटता भी छिपती नहीं, बल्कि प्रकट हो जाती है, जब वे निर्विशेष मायावादमें उनके कर्मयज्ञकी पूर्णाहुति प्रदान करते हैं। निर्विशेष स्वप्न सिद्धिके लिए ब्रह्मके पाँच रूपोंकी कल्पना या पंचोपासनाकी प्रवृत्ति जो हिन्दु-धर्मका प्रतिपाद्य विषय है, वैसे हिन्दु-धर्म आत्मानुशीलनपर धर्म नहीं हो सकता। बल्कि वह आत्मानुशीलनको स्तब्ध करनेवाला आत्महत्याके लिए उपयोगी है।

परमात्माका अनुशीलनकारी आत्मा ही एकमात्र नित्य सनातन वस्तु है, उसको छोड़ कर देह एवं मन तथा उनका स्वभाव या धर्म सभी ही अनित्य है। कर्मजड़स्मार्त धर्म देहधर्म के निकट शुद्धिकी आकांक्षा कर मनोधर्म रूपी बलिवेदीमें आत्माको बलि देता है। निर्विशेष मायावाद भी गुप्त रूपसे एवं दूसरे उपायसे यही करता है। देह धर्मनिष्ठ कर्मजड़ स्मार्त से अधिक चतुर, मनोधर्मके धुरन्धर, याज्ञिक निर्विशेषवादी मुखमें देह धर्मके प्रति निष्ठा न दिखाकर 'व्यवहार' शब्दकी आड़ लेकर वस्तुतः देहधर्मको ग्रहण कर निर्विशेषवाद या आत्महत्याकी ही प्रधानता स्थापन करता है। वर्त्तमान समयमें ये सभी कर्म-काण्डपूर्ण मतवाद ही लौकिक समाजमें 'हिन्दु-धर्म' नाम से आत्मप्रकाश कर ऐसे अनित्य देह एवं मनोधर्म को ही अप्रतिद्वन्द्वी सनातन धर्म या वैदिक धर्म घोषित करनेकी स्पर्द्धा दिखाते हैं। ऐसे नश्वर, नैमित्तिक, परिवर्त्तनशील, आत्मघात-लक्ष्य देह एवं मनके धर्मको 'सनातन' कहनेके लिए यह युक्ति प्रदान करते हैं कि ऐसी बात वेदोंके एकदेशमें वर्त्तमान है। परम, नित्य, सनातन आत्मधर्मयाजी पुरुष लोग किन्तु ऐसी निराधार युक्ति कदापि प्रदान नहीं करते, बल्कि उनकी युक्ति वास्तव वस्तुनिष्ठ है। उन लोगोंका यही कहना है कि जो वस्तु नित्य सत्ताका संरक्षण करे, वही नित्य, सनातन है। आत्मा या चेतन सनातन है। आत्मा या चेतनका नित्य स्वभाव या धर्म ही सनातन धर्म है एवं सनातनत्वका ऐसा विचार ही वेदोंके शिरोभाग श्रुति, वेदसार-पुनरावृत्ति, वेदोंका विस्तार अमल-स्मृति-पुराण-पंचरात्र आदिमें बारम्बार समर्थित होकर वेदके सार्वदेशिक प्रतिपाद्य विषय रूप से प्रमाणित हुआ है। पूर्वपक्ष रूपसे या उत्तर पक्ष या सिद्धान्तकी श्रेणीमें वर्त्तमान विषयकी तुलनामूलक श्रेष्ठता दिखलानेके लिए वेदोंके एक स्थानमें जो बात कही गई है, वही 'सनातन' पदवाच्य नहीं हो सकता। माया के विक्षेपकी बात, असुरोंद्वारा की गई हिंसा की बात, देहविनाशकी बात, वेदोंमें वर्णित होनेके कारण ही वे सनातन शब्द वाच्य होंगे, ऐसी युक्ति कुयुक्ति है। जिस प्रकारसे कृष्ण की तरह कृष्णकी बहिरंगा माया भी सनातनी है, देवता जिस प्रकारसे सदा वर्त्तमान हैं, उनके साथ साथ असुर भी तो देवताओं की श्रेष्ठता प्रतिपादनके लिए मत्सरता विधानपूर्वक सनातन है—ऐसा कहना किन्तु युक्तिका दुरुपयोग करना हुआ। जो नित्य

चेतन है, वही सनातन है। वह चेतन या सनातन वस्तु वृत्तिरहित विचारसे यदि स्तब्ध हो जाय, तो चेतनकी चेतनताकी प्रवृत्ति या परिस्फूर्त्तिके अभावमें सनातनत्व कहाँ रहा? अतएव जब कर्म-जड़ स्मार्त्तवाद या मायावाद आदि 'सनातन' शब्दकी मुख्य वृत्ति तक पहुँचनेमें असमर्थ हैं, तब इनके द्वारा कहे जानेवाला तथाकथित "हिन्दू-धर्म" "सनातन-धर्म" पदवाच्य नहीं हो सकता। श्रीचैतन्य महाप्रभुने सनातन धर्मका प्रचार किया था। दैव-वर्णाश्रम-धर्म एवं वर्णाश्रमातीत पारमाहंस्य धर्म या शुद्ध नैष्कर्म्य सिद्धिरूप सनातन एवं परम सनातन धर्मकी बात श्रीमद्भागवतमें ही कही गई है।

—(साप्ताहिक गौड़ीयसे अनूदित)

श्रीचैतन्य महाप्रभु की सर्वश्रेष्ठता

रक्षोदैत्यकुलं हतं कियदिदं योगादिवर्त्मक्रिया
मार्गो वा प्रकटीकृतः कियदिदं सृष्ट्यादिकं वा कियत्।
मेदिन्युद्धरणादिकं कियदिदं प्रमोज्ज्वलाया महा-
भक्तेर्वर्त्मकरीं परं भगवतश्चैतन्यमूर्त्तिं स्तुमः॥

रामनृसिंहादि अवतारों में राक्षसों एवं दैत्योंका जो विनाश किया था, वह क्या ऐसा हितजनक महान् कार्य था! कपिलादि अवतारोंमें जो सांख्ययोगादि क्रियामार्ग प्रदर्शन हुआ वही क्या गुरुतर कार्य था! गुणावतार ब्रह्मादिकी सृष्टि, पालन, भङ्ग (प्रलय) आदि लीलाओं का महत्त्व कितना है! वराहावतारमें प्रलय-जलमग्ना पृथिवीका उद्धार भी क्या कल्याणकर विषय था! (उन सबका हम उतना आदर कर नहीं सकते ये सभी चैतन्य महाप्रभु के प्रेमदानके निकट बहुत ही साधारण हैं) हम श्रीभगवान्‌की प्रेमोज्ज्वला परमभक्तिके पथ-प्रदर्शक सर्वावतार-श्रेष्ठ श्रीचैतन्य रूपकी स्तुति करते हैं।

—(त्रिदण्डिकुलचूड़ामणि श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद)